ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

वर्ण व्यवस्था में संस्कारों की उपादेयता

डॉ. चन्द्र प्रकाश जोशी

व्याख्याता, राजकीय आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, अजमेर

सार

वार्न वायव्यस्थ (संस्कृत: *वर्ण*), के कई अर्थ होते हैं, जैसे प्रकार, क्रम, रंग या वर्ग, इसका उपयोग सामाजिक वर्गों को संदर्भित करने के लिए किया जाता था सनातन ग्रंथों में जैसे **मनुस्मृति**. इन और अन्य सनातन ग्रंथों ने सिद्धांत रूप में समाज को चार वर्णों में वर्गीकृत किया:

- ब्राह्मण: पुजारी, विद्वान और शिक्षक।
- क्षत्रिय: शासक, योद्धा, सैनिक और प्रशासक।
- वैश्य: कृषिविद, पशुपालक और व्यापारी।
- शूद्र: सेवा प्रदाता।

समुदाय जो चार वर्णों या वर्गों में से एक से संबंधित हैं, उन्हें सवर्ण कहा जाता है। जो लोग किसी वर्ण से संबंध नहीं रखते थे, उन्हें अवर्ण कहा जाता था।आमतौर पर इस अवधारणा का पता ऋग्वेद के पुरुष सूक्त पद्य से लगाया जाता है।मनुस्मृति में वर्ण व्यवस्था पर टिप्पणी अक्सर उद्धृत की जाती है. वर्ण-व्यवस्था की चर्चा धर्मशास्त्रों में व्यापक रूप से की जाती है। धर्म-शास्त्रों में वर्ण व्यवस्था समाज को चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में विभाजित करती है। जो लोग अपने पापों के कारण इस व्यवस्था से बाहर हो जाते हैं, उन्हें अवर्ण (अछूत) के रूप में निरूपित किया जाता है और वर्ण व्यवस्था के बाहर माना जाता है। म्लेच्छ और जो लोग अधर्मी या अनैतिक हैं उन्हें भी अवर्ण माना जाता है।हिन्दू धर्म में सोलह संस्कारों का विधान है। उनमें एक उपनयन संस्कार है। इस संस्कार से बालक के मन में अध्यात्म चेतना जागृत होती है। ऐसा कहा जाता है कि जब बालक ज्ञान अर्जन योग्य हो जाता है, तब उपनयन संस्कार किया जाता है। खासकर ब्राह्मणों में इस संस्कार का अति विशेष महत्व है। कालांतर से इस संस्कार की विधि-पूर्वक निर्वाह किया जा रहा है।

परिचय

उपनयन संस्कार

कालांतर से इस संस्कार का विशेष महत्व है। हालांकि, तत्कालीन समय में वर्ण व्यवस्था उपनयन संस्कार से निर्धारित किया जाता था। ऐसा कहा जाता है कि जब बालक ज्ञान हासिल करने योग्य हो जाए तो उसका सर्वप्रथम उपनयन संस्कार कराना चाहिए। इसके बाद उसे ज्ञान हासिल करने हेतु पाठशाला भेजना चाहिए। प्राचीन समय में जिस बालक का उपनयन संस्कार नहीं होता था उसे मूढ़ श्रेणी में रखा जाता था। जबकि उसकी जाति शूद्र मानी जाती थी।[1,2]

उपनयन संस्कार जाति अनुसार आयु

समाज में वर्ण व्यवस्था व्याप्त है। इस व्यवस्था के अंतर्गत प्रथम स्थान पर ब्राह्मण है, दूसरे पर क्षत्रिय है। जबकि तीसरे पर वैश्य और चौथे पर शूद्र है। इस क्रम में ब्राह्मण बालक का आठवें साल में उपनयन संस्कार होता है, क्षत्रिय बालक का 11 वें साल में होता है। जबकि वैश्य बालक का 15 वें साल में उपनयन संस्कार होता है।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

उपनयन संस्कार विधि

इस संस्कार में बालक जनेऊ धारण करता है, जो धागे से बना होता है। कई ग्रंथों में बालिका के भी उपनयन संस्कार के विधान है। हालांकि, आजीवन ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करने वाली बालिका ही उपनयन संस्कार करा सकती है। बालक 3 तीन धागो से सजी जनेऊ धारण करते हैं।

जबकि विवाहित पुरुष 6 धागों से बनी जनेऊ पहनते हैं। इस संस्कार में मंडप सजाया जाता है, मुंडन किया जाता है और बालक को हल्दी भी लगाई जाती है। इसके बाद स्नान कराया जाता है। इसके साथ ही कई अन्य रीति रिवाजों का निर्वहन किया जाता है।

अवलोकन

प्राचीन भारतीय सामाजिक विचारकों ने भी मनुष्य की मनोवैज्ञानिक प्रवृतियों को ध्यान में रखते हुए सामाजिक स्तरीकरण को एक सुनियोजित नीति को अपनाया तथा कार्यात्मक दृष्टि से समाज को चार वर्गों में विभाजित किया। जिन्हें-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के नाम से जाना जाता है। वर्ण-व्यवस्था भारतीय सामाजिक संगठन के मौलिक तत्व के रूप में पायी जाती है। भारतीय संस्कृति में समाज में प्रत्येक व्यक्ति का स्थान तथा उससे सम्बंधित कार्य उसकी मूलभूत प्रवृत्तियों यानी गुणों के आधार पर निश्चित होता था।

१. वैविध्य के आधार पर वर्ण व्यवस्थाः

सब मनुष्यों में सब बातें एक समान नहीं हैं। फिर भी जो बातें सभी में समान भाव से पाई जाती हैं उनकी मात्रा समान नहीं है।हितोपदेश कार का कथन है- **''आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्''** अर्थात् भोजन, निद्रा, भय, और नर-मादा का सहवास-ये पशु और मनुष्यों में समान हैं।प्राणी-मात्र में जो सामान्य बातें पाई जाती हैं उनका यह अच्छा परिगणन है। किन्तु आहार तथा निद्रा आदि भी सब समान मात्रा में नहीं पाये
जाते। जहाँ प्रकार भेद नहीं होता वहाँ मात्रा-भेद अवश्य है। इस प्रकार भारतीय मनीषियों ने मानव समाज के संगठन के लिए जो संविधान तैयार किया था उसमें इस बात का विशेषध्यान दिया था। गणित शास्त्र में यह बात स्वयंसिद्ध मानी गई है, कि विषम में सम जोड़ने से विषम उत्पन्न होता है। यथा- ७, ९,११ आदि विषम संख्याएं हैं।इस में २,२ जोड़ने से ७+२:९, ९+२:११, ११+२:१३ होते हैं। इसी तरह यदि विषम को सम बनाना हो तो उसमें विषम अंक तोड़ना पडेगा। जैसे- ७+३: १०, ७+९: १६, ११+५: १६;। आश्चर्य है कि समाजशास्त्रा के आधुनिक पंडित सामाजिक संगठन के समय पर इस स्वयं सिद्ध को भूल जाते हैं।[3,4]

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

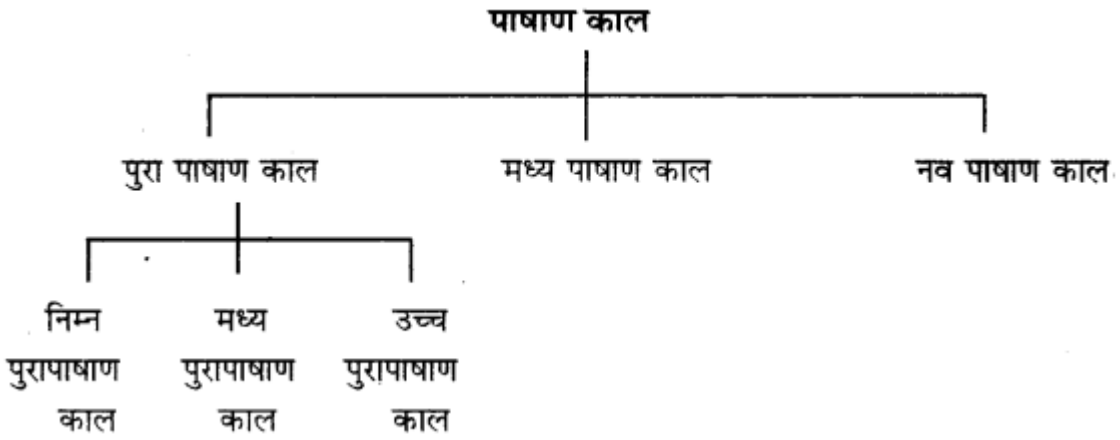

२. पूँजीवाद, साम्यवाद और वर्णव्यवस्थाः

बस, अब हम पूँजीवाद, साम्यवाद और वर्णव्यवस्था का भेद भली प्रकार समझ सकेंगे। (१) भूखों का हक छीनकर भूखरहितों के पास जमा कर देना पूँजीवाद कहलाता है।(२) सबको समान भाग देना साम्यवाद कहलाता है। (३)सबको भूख के अनुसार भोजन देना वर्णव्यवस्था है।साम्यवाद अन्याय का विरोध करते हुए ईर्ष्या को बीच में मिला देता है। और कहता है कि बड़ा-छोटा कोई नहीं। सब समान हैं। वर्ण व्यवस्था इस बात को स्पष्टतया स्वीकार करती है, कि योग्यता और भूख में भेद होने के कारण अधिकारों में भेद का होना आवश्यक है, परन्तु इसका आधार योग्यता ही होना चाहिए, जन्म नहीं।

३. वर्ण का अर्थः वर्ण शब्द 'वृज' वरणे से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है वरण अथवा चुनाव करना। आप्टे संस्कृत-हिन्दी कोश के अनुसार-"-रंग, रोगन, -रंग,रूप, सौन्दर्य, -मनुष्यश्रेणी, जनजातिया कबीला, जाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र वर्ण के लोग)" इस प्रकार, व्यक्ति अपने कर्म तथा स्वभाव के आधार पर जिस व्यवस्था का चुनाव करता है, वही वर्ण कहलाता है।कुछ लोगों की मान्यता है कि वर्ण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋगवेद में रंग अर्थात् काले और गौरे रंग की जनता के लिए किया गया है और प्रारम्भ में आर्य तथा दास इन वर्णों का ही उल्लेख है। डॉ० घुरिये ने ऐसा ही लिखा है कि-" आर्य लोगों ने यहाँ के आदिवासियों को पराजित करके उन्हें दास या दस्यु नाम दिया और अपने तथा उनके बीच अन्तर प्रकट करने के लिए वर्ण शब्द का प्रयोग किया जिसका अर्थ रंग-भेद से है।" वर्ण के इससे ऐसा आभास होता है कि इस शब्द का प्रयोग आर्यो तथा दस्युओं के बीच पाये जाने वाले प्रजातीय अन्तर को स्पष्ट करने के लिए ही किया गया है। लेकिन यथार्थ में डॉ० घुरिये आदि की यह मान्यता अमान्य एवं दोषपूर्ण है।

इसी तरह पाण्डुरंग वामन काणे की मान्यता है कि-"प्रारम्भ में गौर वर्ण का प्रयोग आर्यों के लिए तथा कृष्ण वर्ण का दासों या दस्युओं के लिए किया गया जाता था। धीरे धीरे वर्ण शब्द का प्रयोग गुण तथा कर्मों के आधार पर बने हुए चार बड़े वर्गों के लिए किया जाने लगा। वास्तव में वर्ण शब्द का अर्थ शाब्दिक दृष्टि से नहीं समझा जा सकता। वर्ण का सम्बन्ध व्यक्ति के गुण तथा कर्म से पाया जाता है। जिन व्यक्तियों के गुण तथा कर्म एक से थे यानी जिनमें स्वभाव की दृष्टि से समानता थी, वे एक वर्ण के माने जाते थे। इस बात का पुष्ट प्रमाण श्रीमद्गीता में समुपलब्ध् होता है- **"चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः"** अर्थात् मैने ही गुण और कर्म के आधर पर चारों वर्णों की रचना की है। इससे स्पष्ट होता है कि वर्ण-व्यवस्था सामाजिक
स्तरीकरण की एक ऐसी व्यवस्था है जो व्यक्ति के गुण तथा कर्म पर आधरित है, जिसके अन्तर्गत समाज का चार वर्णों के रूप में कार्यात्मक विभाजन हुआ है।[5,6]

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

४-वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्तिः वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध् में भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये गयेहैं। वेद, उपनिषद्, महाभारत, गीता, मनुस्मृति तथा अन्य धर्म-ग्रन्थों में इस व्यवस्था पर विस्तृत चर्चा कीगई है। यहां इन्हीं ग्रन्थों में विद्वानों द्वारा प्रकट किए गए विचारों के आधर पर हम वर्णों की उत्पत्ति कोप्रस्तुत कर रहे हैं।

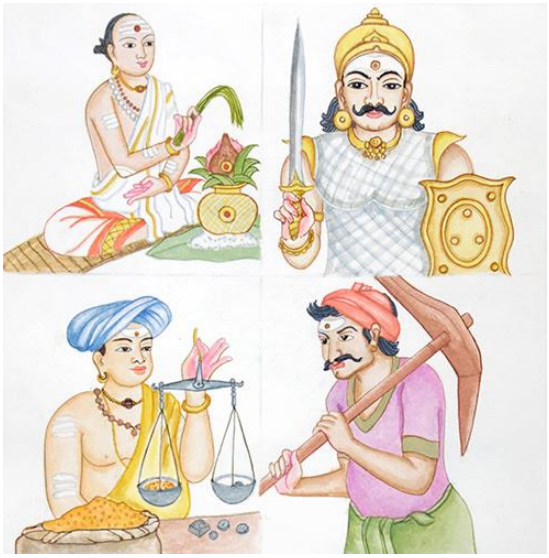

यजुर्वेद के ३१वें अध्याय में वर्णों की उत्पत्ति के संबन्ध् में कहा गया है कि-"ब्राह्मण वर्ण विराट पुरुष अर्थात् परमात्मा के मुख के समान हैं, क्षत्रिय उसकी भुजाये हैं, वैश्य उसकी जंघाएं अथवा उदर हैं और शूद्र उसके पांव हैं।" इसी तरह ऋगवेद मंडल-१०, सूक्त-९०, मंत्र-१२ लिखा है कि-"**ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः। "ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।**" यहाँ ब्राह्मण की उत्पत्ति विराट् पुरुष के मुख से हुई
है ऐसा कहने का अभिप्राय ब्राह्मण शरीर में मुखवत् सर्वश्रेष्ठ है। अतएव ब्राह्मणों का कार्य समाज में बोलना तथा अध्यापकों और गुरुओं की तरह अन्य वर्णस्थ स्त्री-पुरुषों को शिक्षित करना है। इसी प्रकार भुजाएं शक्ति की प्रतीक हैं, इसलिए क्षत्रियों का कार्य शासन-संचालन एवं शस्त्र धारण करके समाज से अन्याय को मिटाकर लोगों की रक्षा करना है। इसीलिए श्रीराम ने वनवासी तपस्वियों के सम्मुख प्रतिज्ञा की थी कि-"निशिरहीन करूं मही भुज उठाय प्रण कीन्ह' 'वाल्मीकि ने लिखा है-"**क्षत्रियाः धनुर्संध् त्ते क्वचित् आर्त्तनादो न भवेदिति**" अर्थात् क्षत्रिय लोग अपने हाथ में इसीलिए धनुष धारण करते हैं कि कहीं पर किसी का भी दुःखी स्वर न सुनाई दे।जघांएं बलिष्ठता एवं पुष्टता की प्रतीक मानी जाती हैं, अतएव समाज में वैश्यों का कार्य कृषि तथा व्यापार आदि के द्वारा धन संग्रह करके लोगों की उदर पूर्ति करना और समाज से पूरी तरह अभाव को मिटा देना है। शूद्र की उत्पत्ति उस विराट् पुरुष के पैरों से मानी गयी है अर्थात् पैरों की तरह तीनों वर्णों के सेवा का भार अपने कंधे पर वहन करना है। विराट् पुरुष के शरीर के विभिन्न अंगों से चारों वर्णों की उत्पत्ति का भाव यह है कि चारों वर्णों में यद्यपि स्वभावगत भिन्न-भिन्न विशेषताएं पायी जाती हैं, तथापि एक ही शरीर के अलग-अलग भाग होने के कारण उनमें पारस्परिक अन्तर्निर्भरता पायी जाती है। स्पष्ट है कि पुरुष सूक्त के इन मंत्रों के आधार पर विभिन्न वर्गों के गुण, कर्म एवं स्वभाव कितनी सहजता तथा उत्तमता से समझाये गये हैं।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

उत्तर वैदिक काल में रचित उपनिषदों में विशेषकर बृहदारण्यक तथा छान्दोग्य उपनिषद् में चारों वर्णों की उत्पत्ति पर विशेष प्रकाश डाला गया है। वहां ब्रह्मा के द्वारा सबसे पहले ब्राह्मण वर्ण पुनः क्षत्रिय, वैश्य तथा सबसे अन्त में शूद्र वर्ण की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है।इसी तरह महाभारत के शान्ति-पर्व में चारों वर्णों की उत्पत्ति के विषय में अपने शिष्य भारद्वाज को सम्बोधित करते हुए महर्षि भृगु कहते हैं कि-"प्रारम्भ में केवल एक ही वर्ण ब्राह्मण था।यही वर्णवाद में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के रूप में विभक्त हो गया। ब्राह्मणों का वर्ण श्वेत था जो पवित्रता-सतोगुणका परिचायक था। क्षत्रियों का रंग लाल जो क्रोध् तथा राजस गुण का सूचक था, वैश्यों का पीला रंग था जो रजो गुण एवं तमो गुण के मिश्रण का सूचक था और शूद्रों का रंग काला था जो अपवित्रता एवं तमो गुण की प्रधानता का प्रतीक था। "इससे सुविदित होता है कि महाभारत काल तक वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म एवं स्वभाव के ही आधार पर थी। अन्यथा ब्राह्मण कुलोत्पन्न परशुराम क्षत्रिय,क्षत्रिय कुलोत्पन्न विश्वामित्र ब्रह्मर्षि, शूद्र कुलोत्पन्न पराशर एवं व्यास आदि को आज संसार ब्राह्मण न मानता।[7,8]

५. वर्ण-व्यवस्था का आधार जन्म या कर्मः वर्तमान समय में वर्ण-व्यवस्था के विषय में मूलभूत प्रश्न यह हे कि यह जन्म पर आधरित हो या गुण, कर्म एवं स्वभाव के आधर पर? साधरणत वर्ण सदस्यता का आधार
जन्म के न मानकर गुण एवं कर्म का माना जाने लगा है, लेकिन इस विषय में विद्वानों में भी एकरूपता नहीं है। आधुनिक युग में वोटों की राजनीति ने इसे और अधिक बढावा दिया है। इस विषय में डॉ० राधकृष्णन् शब्द के हैं-" इस व्यवस्था में वंशानुक्रमणीय क्षमताओं का महत्व अवश्य था, परन्तु मुख्यतया यह व्यवस्था गुण तथा कर्म पर आधारित थी।"इन्होंने महाभारत कालीन एवं उससे प्राचीन के विश्वामित्र, राजा जनक, महामुनि व्यास, वाल्मीकि, अजमीड और पुरामीड आदि के अनेकों उदाहरणों से अपनी बात को प्रामाणित किया है।डॉ० जी एस घुरिय ने भी वर्ण-व्यवस्था को गुण एवं कर्म के आधार को स्वीकार करते हुए लिखा है कि-"प्रारम्भ में भारत में दो ही वर्ण थे-आर्य और दास अथवा दस्यु।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

आर्य भारत में विजेता के रूप में आया था उन्होंने अपने को श्रेष्ठ और यहां के मूल निवासियों द्रविडों को निम्न समझा, स्वयं को द्विज और द्रविडों को दास या दस्यु कहा। समय के साथ-साथ जैसे-आर्यों की संख्या में वृद्धि् हुई- उनके कर्मों में विभिन्नता आती गई और द्विज वर्णों के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णों में विभक्त हो गया।"के.एम. पणिक्कर की मान्यतानुसार- "यदि जन्म ही वर्ण सदस्यता का आधार होता तो विभिन्न वर्णो के पेशों में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन सम्भव नहीं था। परन्तु प्राचीन साहित्य से उपलब्ध् प्रमाण यह प्रकट करते हें कि ब्राह्मण न केवल धर्म कार्य का सम्पादन एवं अध्ययन ही करते थे बल्कि वे साथ ही औषध्,शस्त्र निर्माण एवं प्रशासन सम्बन्धी कार्य में भी लगे हुए थे।.....वैदिक साहित्य में कहीं ऐसा वर्णन नहीं मिलता जिससे प्रकट हो कि लोगों के लिए जन्म के आधार पर व्यवसाय का चुनना अनिवार्य था। पवित्र ग्रन्थ'ऐतरय ब्राह्मण' की रचना एक ब्राह्मण ऋषि एवं उसकी दस्यु पत्नी से उत्पन्न और सपुत्र ने की थी। इस कथन से स्पष्ट है कि वर्ण की सदस्यता कर्म के आधर पर प्राप्त होती थी न कि जन्म के आधर पर"इस उपर्युक्त विवेचना से सुस्पष्ट हो जाता है कि प्राचीनकालीन वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म एवं स्वभाव के ही अनुसार थी। परन्तु महाभारत युद्ध के बाद योग्य राजा एवं योग्य विद्वानों के अभाव में सारी सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। यदि भारत को वह पुराना विश्वगुरु वाला गौरव पुनः प्राप्त करना है तो वही प्राचीन वर्ण-व्यवस्था दुबारा से लागू करनी होगी।

विचार – विमर्श

वर्णमीमांसा

ब्र. यशदेव आर्य.....

इस आर्यावर्त्त देवभूमि में रहने वाले सहृदय- नागरिकों एवं विभिन्न धर्मावलम्बियों को यहाँ की प्राचीनतम संस्कृति धार्मिक भावना एवं कर्तव्यों को जान लेना अत्यन्तावश्यक है। क्योंकि प्राचीन समय में वर्णों एवं आश्रमों का वर्गीकरण जिस प्रकार से यथास्थिति को जानकर किया जाता था वैसा आज देखने को नहींमिलता। अब तो केवल जन्मना वर्णवाद एवं धर्मान्धता का कुप्रचार अधिक दिखाई व सुनाई देता है। वर्तमानकाल में आश्रमी जीवन की दुर्गति वर्णव्यवस्था के नाम पर पापाचार सर्वत्र विस्तृत हुआ है, क्योंकि अब की वर्ण व्यवस्था प्राचीन वर्णव्यवस्था से एकदम भिन्न है। इसके सुस्पष्ट प्रमाण धर्मशास्त्रों एवं विभिन्न स्मृतियों में प्रत्यक्ष देखने को मिलते हैं यथा आपस्तम्ब धर्मसूत्र में **धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृतौ** ।१.५.१०धर्म के सदाचारण से निम्न से निम्न वर्ण भी उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है उसे उसी वर्ण में गिनना चाहिए।क्योंकि सदाचार शून्य उच्च वर्गस्थ भी शूद्र के समान है एवं सदाचारी निम्न जातीय भी ब्राहमणत्व को प्राप्त करता है।[9,10]

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

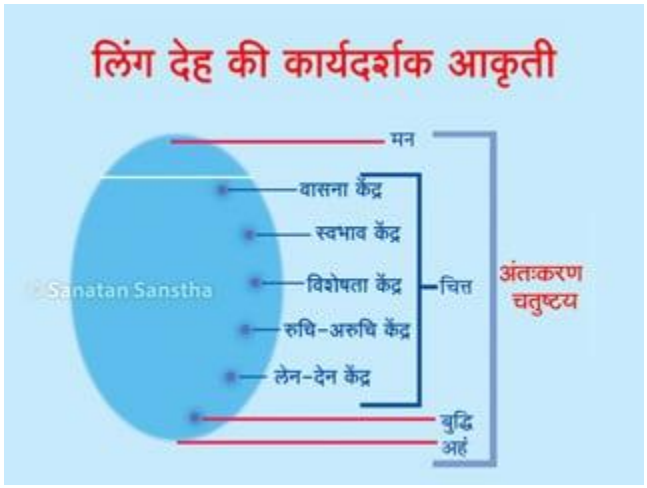

अधर्मचर्य्यापूर्वो वर्णो जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ। आपस्तम्ब-१.५.११
अर्थात् अधर्माचरण से युक्त उच्च वर्णस्थ शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। वर्ण शब्द से ही यह सिद्ध हो जाता है कि धर्मानुसार वर्ण कहते किसे है यह जन्मना हो अथवा कर्मणा तब निघण्टु भाष्य निरुक्त में निरुक्तकार वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति **'वर्णो वृणोतेः'** इस वचन से करते हैं अर्थात् कर्मों के आधार पर जिसका वरण किया जाए वही वर्ण है। इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के वर्णाश्रम धर्म विषय में स्पष्ट किया है कि-
वर्णो वृणोतेरिति निरुक्तप्रामाण्यादपरणीया वरीतुमर्हाः। गुणकर्माणिच दृष्ट्वा यथायोग्यं व्रियन्ते ये ते वर्णाः।।
वर्ण कर्मानुसार ही हो जन्मना नहीं इसकी पुष्टि ब्राहमण क्षत्रादि शब्दों की रचना व्युत्पत्ति एवं व्याकरणानुसार हो जाती है। यथा- **ब्रहमणा वेदेन परमेश्वरस्य उपासनेन च सह वर्तमानो विद्यादि उत्तम गुणयुक्तः पुरुषः।**विद्यादि आदि श्रेष्ठ गुणों का धारण करने वाला एवं परमात्मा एवं वेदोपासना में चित्त को रमा लेने वाला ही ब्राहमण होता है। महर्षि मनु ने भी ब्राहमण के इन्हीं प्रमुख कर्तव्यों का उल्लेख मनुस्मृति में किया है। **'आग्नेयो हि ब्रा२णः'** (काठ.२९.९०) यज्ञादि कर्मों से सम्बन्ध रखने वाला ही ब्राहमण होता है। यदि जन्मना वर्ण व्यवस्था को सत्य माना जाए तो समाज कुंठाग्रस्त होकर ही मर जाएगा। वृद्धि का कहीं भी कोई भी चिहन अथवा संकेत प्रकट नहीं होगा। वृद्धि होगी भी तो उच्च वर्णस्थ लोगों की होगी अथवा यूँ कहें कि वृद्धि होगी ही नहीं क्योंकि जन्मना वर्ण व्यवस्था के आधार पर ब्राहमण ही रहेगा और शूद्र भी शूद्र। किसी को अपनी प्रोन्नति करने का कोई अवसर ही प्राप्त न होगा। ब्राहमण नीच कर्मों में प्रवृत्त भी ब्राहमण ही होकर रहेगा और शूद्र धर्माचरण करता हुआ भी शूद्र। अतः मनुस्मृति में – **शूद्रो ब्राहमणतामेति ब्राहमणश्चैति शुद्रताम्।क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यास्तथैव च।।(१०/६५)** गुण कर्मों के आधार पर शूद्र भी ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य हो सकता है। इसी प्रकार अन्य वर्णों को भी समझना चाहिये।

लोकानां तु वृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः।
ब्राहमणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत्।।(१/३१)
लोक की वृद्धि के लिए मुख, भुजा, जंघा और पाद रूप इन चतुवर्ण-व्यवस्था का आरम्भ हुआ। इसी प्रकार कर्मणा वर्णव्यवस्था के आधारभूत अन्य शास्त्रों, ग्रन्थों एवं वेदों मे भी चतुर्वर्ण का उल्लेख मिलता है।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

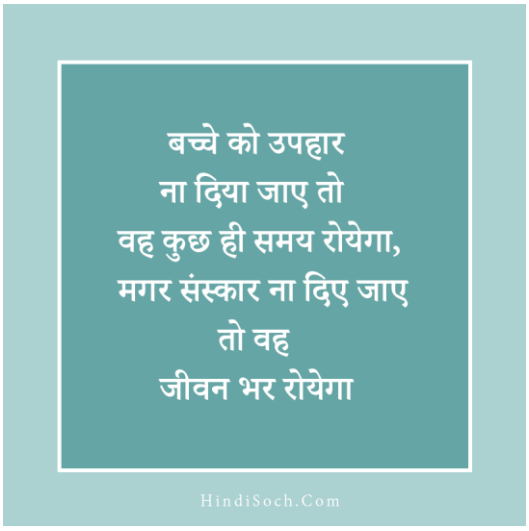

ऊर्जादः उत यज्ञियासः पञ्चजनाः मम होत्रं जुषध्वम्। ऋग. (१० .५३.४)
पाँचवे वर्ण का विधान निरुक्त में किया है **चत्वारो वर्णा निषादः पंचम इति औपमन्यवः।**(निरुक्त.-३.८) अर्थात् चार वर्णों के पश्चात् निषाद को पाँचवा पुरुष मानना चाहिए, यह वेद सम्मत है।
इन चारों वर्णों का अपना-अपना महत्व है और वेद में इसकी तुलना मनुष्य शरीर से उनके कार्यानुरूप की गई है यथा शरीर में मुख प्रधान है उसी प्रकार समाज में ब्राहमण। भुजाओं का कार्य शरीर रक्षा व अन्य, इसलिए क्षत्रिय भुजा रूप है। जंघा शरीर का भार सम्भालने वाली होती हैं, इसलिए वैश्य व्यापारादि कार्य से समाज आदि का भार सम्भालने वाला होता है। पैरों से संज्ञा शूद्र की की गई है। अर्थात् जो इन तीनों के कर्मों को करने में असमर्थ हो वह शूद्र।[11]

ब्राहमणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।(यजु.-.३१/११)
इसी प्रकार **अस्य सर्वस्य ब्राहमणो मुखम्**; शतपथ-(३.९.१.४)

क्षत्रिय– **क्षत्रं राजन्यः (एत.८.२, ३.४)**
एवं क्षत्रस्य वा एतद रुपं यद् राजन्यः
(शतपथ.१३.१.५.३) अर्थात् क्षत्रिय क्षत्र का ही एक रूप है, जो दुष्ट शत्रुओं से हमारी रक्षा करता है, इसी प्रकार वैश्य के संदर्भ में ग्रन्थों में अनेकशः प्रमाण मिलते हैं। यथा **एतद्वै वैश्यस्य समृद्येत् पशवः** (तां.-१८.४.६) पशुपालन से वैश्य की समृद्धि होती है। इसका सीधा एवं स्पष्ट तात्पर्य वैश्य के कर्म से है अर्थात् जो व्यक्ति पशुपालन, व्यापार आदि कार्यों में संलग्न है, वही वैश्य है।महर्षि मनु ने शूद्र को कहीं पर भी अपवित्र, अछुत एवं हीन की संज्ञा नहीं दी है। उनके मतानुसार जो व्यक्ति सबकी सेवा करने वाला हो, वह अपवित्र कैसे हो सकता है। **उत्कृष्टः शुश्रूषुः** (मनु.९/३३५) शूद्र को शूद्र की संज्ञा केवल मात्र इसलिए दी गई क्योंकि अन्य वर्णों की तुलना में वह अल्पज्ञानी होता है और इस अज्ञानता के कारण उसका दूसरा जन्म गुरु के कुल में न होने से वह शूद्र संज्ञा से सम्बोधित किया जाता है। **द्विर्जायते इति द्विजः।**ब्राहमण, क्षत्रिय एवं वैश्य को द्विज इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इनका दूसरा जन्म गुरु के गर्भ से वेदारम्भ के काल में होता है। महर्षि मनु ने इस विषय में स्पष्ट किया है –

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

संस्कार और जीवन

• अच्छे बुरे संस्कार मिलकर एक नए जन्म का कारण बनते है| किसी ने हमें अच्छे बुरे कर्म करते देखा हो या ना देखा हो ईश्वर ने एसी व्यवस्था रक्खी है कि हमारे संस्कार स्वयं ही हमारे सुख या दुःख का कारण बने |

ब्राहमणक्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णाः द्विजातयः।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रः नास्ति तु पंचमः।।
गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था के स्पष्ट संकेत ब्राहमणग्रन्थों में मिलते हैं। ब्राहमण व्यक्ति भी कर्मों के आधार पर क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्र बन सकता है। यथा- ऐतरेय में उदाहरण आता है **स ह दीक्षमाणः एव ब्राहमणतामभ्युपैति** (ऐत. ७.२३) अर्थात् क्षत्रिय दीक्षित होकर ब्राहमणतत्त्व को प्राप्त हो जाता है। **तस्मात् अपि (दीक्षितम्) राज्यन्यं वा वैश्यं वा ब्राहमण इत्येव ब्रूयात्। ब्राहमणो हि जायते यो यज्ञात् जायते।**(शत. ३.२.१.४०)
अर्थात् क्षत्रिय वैश्य भी यज्ञ दीक्षा ग्रहण करके ब्राहमण वर्ग में दीक्षित हो सकता है। यहाँ पर यज्ञ में दीक्षित होने से तात्पर्य ब्रहमचर्याश्रम में वेदाध्ययन के समय से है। उसके बाद वह ब्राहमण भी कर्मानुसार क्षत्रियत्व,वैश्यत्व अथवा शूद्रत्व को प्राप्त होते हैं। उपरोक्त विवेचना एवं विभिन्न प्रामाणिक ग्रन्थों के स्पष्ट एवं मजबूत प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि वर्णव्यवस्था जन्मना न होकर कर्मणा ही श्रेयस्कर एवं न्यायपूर्ण है। इसी के आधार पर हमें अपने वर्ण का चयन करना चाहिए, तभी एक सुव्यवस्थित समाज एवं राष्ट्र का विकासपूर्ण ढाँचा तैयार होगा।[12]

परिणाम

जाति बनाम वर्ण व्यवस्था
श्री यदुनाथ आर्य.....
वर्तमान हिन्दू समाज अपनी जाति-भेद की प्रथा के कारण बहुत बदनाम है। कोई समय था जब यह प्रथा बुद्धि संगत सिद्धान्तों पर आश्रित थी, और वर्ण व्यवस्था कही जाती थी। इस समय ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। अब तो इसका ढांचा मात्र शेष रह गया है। आज का हिन्दू समाज बहुसंख्यक जातियों और उपजातियों में बंटा हुआ है। जिनको वेदों का तनिक भी समर्थन प्राप्त नहीं है। आज इस प्रकार के मनमाने ढंग से विभाजन का परिणाम अशान्ति के सिवा और कुछ नहीं हुआ करता।वेद में मनुष्य के चार प्रकार के वर्गीकरण का प्रतिपादन किया गया है।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

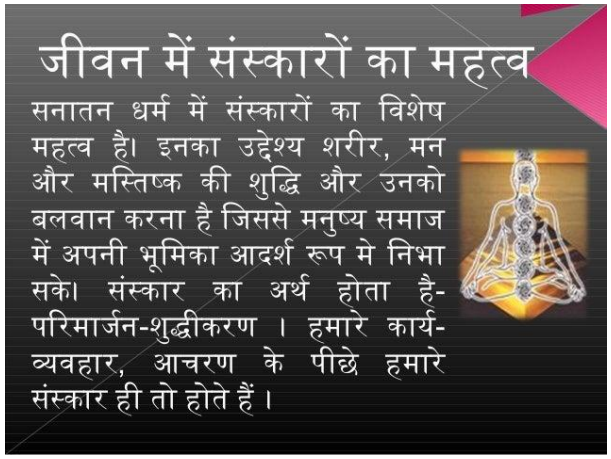

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते
ब्राहमणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यःकृतः।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

इस वर्गीकरण के अनुसार समाज का मुख ब्राहमण, भुजाएँ क्षत्रिय, जंघाएँ वैश्य और पैर शूद्र माने जाते हैं। वर्ण-व्यवस्था के वर्ण शब्द के अर्थ से बड़ा भ्रम फैला है। साधारणतः वर्ण का अर्थ रंग होता है। इस अर्थ के आधार पर कुछ लोगों ने वर्ण-व्यवस्था के रूप में समाज के वर्गीकरण को रंगभेद पर आश्रित माना है।उन्होंने अपनी इस मान्यता के समर्थन में कहा है कि मूलनिवासी श्याम वर्ण के थे इसलिए उन्हें हेय दृष्टि से देखा गया था और दास बना लिए गये थे। यदि इस मान्यता को स्वीकार कर लिया जाये तो समाज के श्याम और गौर ये दो विभाग होने चाहिएँ। मुख भुजाओं, जंघाओं, और पैरों के रूप रंग में शरीर का विभाजन किसी प्रकार भी रंग पर अवलम्बित नहीं हो सकता। तुम सिर से लेकर पैरों तक देख जाओ। शरीर के सब अवयवों का रंग एक जैसी ही दिखाई देगा। इससे स्पष्ट है कि रंग का सिद्धान्त रंग-भेद के पक्षपातियों की झूठी कल्पना है। वर्णों के गुण-कर्म-वर्णन-प्रसंग कई वेद-मन्त्रों द्वारा बताया गया है कि वेद के समस्त मन्त्र गुण और कर्म की योग्यता पर वर्ण निर्णय करते हैं। इन में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जो बिना योग्यता के केवल किसी का पुत्र होने के कारण वर्ण की उपाधि देने का संकेत करता हो। आप जन्म से वर्ण मानने वालों की युक्तियों को तौलिये और प्रमाणों पर चिन्तन करिए। सबसे प्रथम परमात्मा के रचनाओं पर चिन्तन कीजिए- वृक्षों में आम, पीपल, अमरुद, अनार आदि पशुओं में गौ, गधा, घोड़ा आदि पक्षियों में तोता, मैना, मयूर आदि इसी प्रकार मनुष्यों में ब्राहमण क्षत्रियादि भेद हैं। ऐसा कहने वाले वर्ण और जाति एक वस्तु मानकर भारी भूल करते हैं अथवा स्वयं वास्तविकता को जानते हुए भी स्वार्थवश साधारण जनता को भ्रम में डालते हैं। जाति का लक्षण न्यायदर्शनकार गौतम मुनि जी लिखते हैं, **''आकृतिरितिलिाख्या''** (न्याय.२.२६८) इस पर वात्स्यायन मुनि भाष्य में कहते हैं। **'यथा जाति जाति लिन्गानि च प्रत्याख्यायन्ते तामाकृतिं विद्यात्'** जिससे जाति और जाति के चिह्न बताये जाते हैं उसे आकृति कहते हैं। अब स्वभाविक रुप से प्रश्न उठता है कि जाति किसे कहते हैं? तो उत्तर में कहा गया है- **समानप्रसवात्मिका जातिः**(न्या. २/२/१९) इस पर भी वात्स्यायन मुनि भाष्य में कहते हैं- **या समानां बुद्धिम प्रसूते भिन्नेष्वधिकरणेषु,यया बहूनीतरेतरतो न व्यावर्तन्ते, योऽर्थोऽनेकत्र प्रत्ययानुवृत्तिनिमित्तं तत् सामान्यम्। यच्च केषाघिद भेदं कुतश्चिद्भेदं करोति तत् सामान्य विशषा जातिरिति।''**

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

अर्थात् भिन्न-भिन्न वस्तुओं में समानता उत्पन्न करने वाली जाति है। इस जाति के आधार पर अनेक वस्तुएँ आपस में पृथक् पृथक' नहीं होतीं अर्थात्-एक ही नाम से बोली जाती हैं। जैसे गौएँ पृथक् कितनी भी हो तो भी सबको गौ कहते हैं। यह एकता जाति के कारण ही उत्पन्न हुई जाति भी दो प्रकार की होती है-एक सामान्य दूसरी सामान्य-विशेष जो अनेक वस्तुओं में एक आकार की प्रतीत होती है वह सामान्य जाति है, जैसे पशु जाति सामान्य है।यह पशुत्व गौ, भैंस, घोड़े आदि में सामान्य (एक जैसा) है। जो किसी से भेद और किसी से अभेद कराती है वह सामान्य विशेष जाति है जैसे गौ। गौ की प्रतीति सब गौओं में एक-जैसी होती है, यह तो हुआ अभेद पर घोड़े को गौ नहीं समझ सकते यह हुआ भेद, तो इसका नाम सामान्य विशेष जाति है। उक्त दोनों जातियों में से मनुष्य सामान्य जाति है। मनुष्यत्व की दृष्टि से सभी वर्ण मनुष्य हैं, न उनमें कोई ज्येष्ठ है और न कनिष्ठ। ज्येष्ठता और कनिष्ठता वाले तो गुण होते हैं। मनुष्य योनि क्योंकि कर्म और भोग दोनों योनि हैं, अतः इसमें गुणों के साथ कर्म पर भी ध्यान देना अनिवार्य है। अतः ब्राहमणादि वर्णों का निर्णय गुणों और कर्मों के आधार पर होने के कारण ही वर्णों का नाम वर्ण पड़ा, क्योंकि वर्ण शब्द का अर्थ गुण और कर्म हैं-[13]

वरणीया वरितुमर्हा गुणकर्माणि च दृष्ट्वा यथायोग्यं व्रियन्ते ये ते वर्णाः। गुण और कर्म देखकर जो किसी समुदाय-विशेष के स्वीकार किये जावें, वे वर्ण कहलाते हैं। निरुक्त को वर्ण का अर्थ कर्म भी कहा गया है-**वृतमिति कर्मनाम वृणोतीति सतः**– यहाँ "वृज" धातु से बनने वाले वृत् शब्द का अर्थ स्पष्ट ही कर्म लिया है, और साथ ही हेतु दिया है– **वृणोतीति सतः** – क्योंकि शुभकर्म मनुष्य को ढक लेते हैं, अतः व्रत का अर्थ कर्म है। इसी प्रकार इसी धातु से निष्पन्न हुए वर्ण शब्द का अर्थ**"वर्णो वृणोते...."** के आधार पर गुण और कर्म है। अतः सामान्य जाति का सामान्य विशेष जाति के साथ मिलान करना भारी भूल है। हाँ, जिस प्रकार आम्र में खट्टे-मीठे आदि गुणों का भेद होता है, वैसे तोते तोते में पढ़ने या न पढ़ने के गुण का भेद होता है। गौ-गौ में न्यून और अधिक दूध आदि देने के गुण का भेद होता है।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

इसी प्रकार मनुष्यों में अच्छे और बुरे गुणों और कर्मों के आधार पर भेद है। इसी को शास्त्र ने वर्ण कहा है। यदि सामान्य विशेष जाति पशु, वृक्ष, पक्षियों का-सा मनुष्य में भी भेद होता तो जिस प्रकार भिन्न-भिन्न पशुओं के झुण्ड में से गौ, भैंस आदि को पृथक्-पृथक् पहचान लेते हैं, वृक्षों और पक्षियों को पृथक्-पृथक् जानते हैं, इसी प्रकार मनुष्यों के समूह में से ब्राहमण, क्षत्रियादि को अलग से पहचान लेते, किन्तु कोई भी नहीं पहचान सकता। चार वर्ण हैं- ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।आजकल समाज में लोग जहाँ जन्म के अनुसार वर्ण मानते हैं वहाँ आर्यों का मत है गुण-कर्म-स्वभाव और जीविका के साधन के अनुसार वर्ण को स्वीकार करता है।जन्मपरक वर्ण व्यवस्था के नाम पर अतीतकाल में हिन्दू समाज में शूद्रों पर जो अत्याचार किये गए, उनकी कथा अत्यन्त हृदय-द्रावक है।शूद्रों को छूने तक में पाप समझा जाता था, फिर उनके साथ समानता के व्यवहार की आशा ही क्या की जाती?शूद्रों को विद्या और वेद पढ़ने के अधिकार से वंचित रखा गया और पराय के जैसा उनसे व्यवहार करते थे, तथा जबर्दस्ती उनसे सेवा वसूल करना अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझते थे।किन्तु आर्य समाज का दृष्टिकोण इसके विपरीत है।आर्य समाज चारों वर्णों को समाज का अवश्य अंग मानता है और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की प्राप्ति की दृष्टि से सबको समानता के स्तर पर रखता है, अर्थात् जहाँ तक रोटी-कपड़ा और मकान का सम्बन्ध है, वे ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी के लिए समान रूप से आवश्यक हैं और इनकी प्राप्ति में किसी के साथ भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।परन्तु जहाँ तक सामाजिक प्रतिष्ठा का सम्बन्ध है, वह सबसे अधिक मात्रा में उनलोगों को उपलब्ध होगी जो अपना सारा जीवन ज्ञान की उपसना में लगाएँगे, जितने भी कलाकार लेखक, अध्यापक, वैज्ञानिक और सरस्वती के साधक हैं और जो समाज के अज्ञान का निराकरण करते हैं वे सबके सब ब्राहमण कहलाएँगे, फिर चाहे उनका जन्म किसी कुल में क्यों न हो।[12]

सामाजिक प्रतिष्ठा में दूसरा स्थान होगा उन क्षत्रियों का जो बल की उपासना करते हैं और अन्याय का प्रतीकार अपने जीवन का लक्ष्य बनाते हैं। सैनिक, योद्धा और राजकीय प्रशासनिक सेवाओं के कर्मचारी इस कोटि में आते हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा में तीसरा स्थान होगा धन की उपासना करने वाले और उसी में रत रहने वाले वैश्यों का। व्यापारी उद्योगपति, दुकानदार और अधिकांश नौकरी पेशा लोग भी इसी कोटि में आएँगे।वे सब समाज के भौतिक अभावों की पूर्ति का प्रयत्न करते हैं।ज्ञान, बल और धन की उपासना करने वाले उक्त तीनों वर्णों में भी मूल प्रेरणा स्वार्थ की नहीं प्रत्युत परार्थ की ही है।सार रूप में यों कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति राष्ट्र की अविद्या को दूर करने का प्रयत्न करेंगे वे "ब्राहमण" जो अन्याय को दूर करने का प्रयत्न करेंगे वे "क्षत्रिय" और जो व्यक्ति राष्ट्र में प्रसृत अभाव की समस्या को हल करने का व्रत लेंगे वे "वैश्य" कहलाएँगें। जो व्यक्ति राष्ट्र में अविद्यादि अभाव की समस्या को हल करने में विशिष्ट योगदान नहीं दे सकता है वह शूद्र कहलायेगा। समाज के लिए ये चारों समान रूप से उपयोगी है, एक भी अंग अलग हो जाने पर समाज-व्यवस्था अस्त व्यस्त हो जाएगी।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

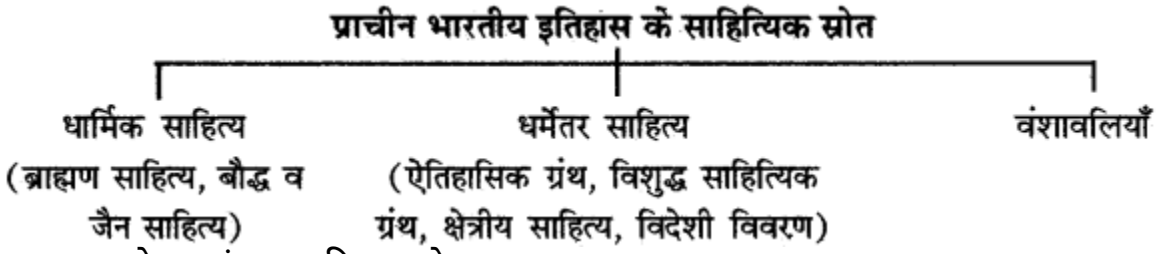

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।

प्रत्येक व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है, उसके पश्चात् संस्कारों के आधान से प्राप्त गुण-कर्म के द्वारा वह द्विजत्व को प्राप्त होता है। जिस तरह वकील का बेटा जन्म से वकील नहीं और डॉक्टर का बेटा जन्म से डॉक्टर नहीं होता उन्हें क्रमशः वकालात और डॉक्टरी पास करने पर ही वकील और डॉक्टर कहा जा सकता है, उसी प्रकार ब्राहमणत्व के गुण-कर्म से ही न ब्राहमण का बेटा भी ब्राहमण नहीं हो सकता। उसे विद्याध्ययन, तपस्या और सदाचार के द्वारा ब्राहमणत्व अर्जित करना होगा। जन्म परक जाति की मान्यता सामाजिक विकास का जितना उत्तम उपास है, उतना और कोई उपाय नहीं हो सकता।

आदर्श समाजवाद वैदिक साहित्य के परिपेक्ष में

प्रो. ज्ञानचन्द रावल , ललित चौहान.....

इस संसार में प्रारम्भ से लेकर आज तक अनेकों संस्कृति या समय-समय पर पैदा हुईं तथा विनष्ट हो गयीं परन्तु उन सभी संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति आज भी अत्यन्त समृद्ध एवं समुन्नत है जिसके विषय में कविवर इकबाल ने कभी कहा था कि-

''है बात क्या कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारे।।
यूनान मिस्र रोम सब मिट गये जहा से।
बाकी मगर है अब तक नामोनिशा हमारा।।''

भारतीय संस्कृति और सभ्यता उतनी ही प्राचीन है जितनी कि यह सृष्टि अर्थात् यह भारतीय संस्कृति जगत् के प्रारम्भ से ही विद्यमान है उस समय देश अनेक जातियों एंव उपजातियों में विभक्त न होकर एक ही मानव जाति में बिना किसी रूप में संगठित था समस्त मानवजाति बिना किसी भेद-भाव के शांतिपूर्वक फली-फूली इसके मूल में वैदिक शिक्षा का पावन संदेश **''वसुधैव कुटुम्बकम्''** की पवित्र भावना काम कर रही थी। यह थी उदात्त कल्पना वैदिक संस्कृति की जिसमें एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की रक्षा की बात कही गई है।'' आज समाज को उस प्राचीन रूप में प्रतिष्ठित करने के लिये निम्नलिखित मुख्य उपायों को व्यवहार में लाना होगा।[11]

परस्पर भ्रातृभाव–

अग्नि ऋषि प्रणीत ऋगवेद के मण्डल पाच सूक्त संख्या साठ के मंत्र संख्या पाच में निम्नलिखित हृदयग्राही सदुपदेश प्राप्त होता है-

''अज्येष्ठासो अकनिष्ठासो ते सभ्रातरो वावृधुः सौभगाय।
युवा पिता व्वया रुद्र एषां सुधुधामं पृथिवीं सुदिनामरुभ्यः।।''

अर्थात् मनुष्य (जाति रूप रंग तथा नस्ल से रहित) आपस में भाई-भाई उनमें कोई छोटा या बड़ा नहीं है ये सभी मिलकर सौभाग्य की वृद्धि के लिये समुन्नत हो, उन सबका पिता शक्ति सम्पन्न सर्वरक्षक और सबको मर्यादा में रखने वाला परमेश्वर है और अनेक

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

प्रकार के धन धान्य देने वाली पृथिवी उनकी माता है। इसका भाव यह हुआ है। जिसमें ना कोई बड़ा है न कोई छोटा बल्कि सभी परस्पर भाई-भाई हैं।यह भ्रातृ भाव तभी स्थायी रूप से सुदृढ़ हो पायेगा जब यहा के लोग यह अच्छी तरह से समझ लें कि हम सभी के माता-पिता एक हैं।अस्तित्ववाद की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता यही है कि उसके द्वारा सबको एक पिता का पुत्र समझ कर भाई-भाई के पारस्परिक सम्बंध की स्थापना होती है। वेदों में यह उच्च भाव अनेकशः मिलते है। अथर्ववेद के तीसरे काण्ड में इसी तरह का एक और सुंदर प्रसंग प्राप्त होता है यथा-**''करशफस्य विशफस्य द्यौः पिता पृथिवी माता।यथाभिचक्रः देवास्तथा पकणुता पुनः।।''**अर्थात् करशफः निर्बल और विशफ प्रबल प्रकाशपुंज (परमात्मा) पिता और यह पृथिवी (उनकी) माता है ऐसा समझते हुए विद्वान् ने (पुरूषार्थ करने का) जैसा चल चलाया है उसे फिर-फिर काम में लाओ।

२– सर्वत्र एक ज्योति का दर्शन-

आदर्श समाज के नवनिर्माण का दूसरा सूत्र सर्वत्र एक प्रभु की निर्मल ज्योति का दर्शन है जिसके पारस्परिक प्रेम की समृद्धि से समस्त समाज सुखमय बन सकता है यथा-

''यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।''

अर्थात् जो कोई सम्पूर्ण चराचर जगत् को परमात्मा ही में देखता है यह निंदित नहीं होता। यह शिक्षा कितनी महत्वपूर्ण है तब प्रत्येक प्राणी का शरीर ही उसे ईश्वर का मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर एंव गुरुद्वारा आदि के रूप में दिखाई देने लगेगा।ऐसी दशा में कौन मंदमति ऐसा होगा जो उसे तोड़ने की कल्पना भी कर सकता है। इस शिक्षा से मनुष्यों में यह भावना पैदा होती है कि किसी भी प्राणी को तकलीफ नहीं देनी चाहिए। ऋषिवर देवदयानंद के गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति के पुनरुद्धारक स्वामी श्रद्धानंद जी के जीवन में एक ऐसी ही घटना घटित हुई थी एक स्थान से एक समूह आया हुआ था। आवश्यक गोष्ठी (सभा) हो जाने पर सांयकाल जब उनके नमाज अदा करने का समय हुआ तो उनके मुखिया ने पूछा स्वामीजी हमारे नमाज अदा करने का समय हो गया है हमलोग नमाज कहा अदा करे ? तब स्वामी जी ने बड़े सहज भाव से उत्तर दिया इसी यज्ञशाला में आपस भी नमाज अदा कर लें। उन मुस्लिम भाईयों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ, उन्होंने कहा स्वामी जी यहां पर तो आप लोग अभी अपना हवन संध्या कर रहे थे, स्वामी जी ने उसी सहजता एंव सौम्यता के साथ उत्तर दिया तो फिर क्या हुआ ?हमने अपनी विधि से अपनी पूजा कर ली अब आप लोग अपनी विधि से अपनी पूजा कर लें आखिर में वह ईश्वर और अल्लाताला एक ही है। इस उदारता का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा इसी के प्रतिफल स्वरूप दिल्ली के जामा मस्जिद में स्वामी श्रद्धानंदजी का उन्होनें उपदेश बड़ी श्रद्धा से करवाया था। यह सम्मान दूसरे किसी हिन्दू नेता या विद्वान् को आज तक नहीं प्राप्त हुआ। यहा तक कि महात्मा गाधी को भी ऐसा सौभाग्य नहीं मिला इस तरह यह सुस्पष्ट हो जाता है कि एक निर्मल ज्योति के सर्वत्र दर्शन से हिंदु, मुस्लिम, सिक्ख तथा ईसाई

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

आदियों के आपसी भेद-भाव मिटाकर परस्पर प्रेम भाव का संचार होने लगता है इसी प्रेमतत्व को लक्ष्य करके किसी अमेरिकन विद्वान् ने लिखा है कि-[10]''बड़ी चर्चा सतियों को कुचल देने और वर्निल तथा टोक्यों कि ओर चलने और बिना किसी शर्त के आत्मसम्पर्ण की बात कहलाती है। हम पाश्चात्यों में इसका अभाव ही है बल, हिंसा, बदला लेने की इच्छा, अहंमन्यता, घमण्ड और अधिकार इससे हम खूब परिचित हैं और इसको हमने औरों में भी रोग की तरह फैलाया है, जो उनके हमारे अनुकरण, प्रेम, नम्रता, आत्म त्याग और शान्ति उन्हें हम बहुत थोड़ा जानते हैं। पहले और यह अन्तिम सिद्धांत ही संसार को मौत से बचा सकते हैं। कौन (इस बात से) दुखी हो सकता है कि अब तुला दण्ड पश्चिम से पूर्वकी और झुक रहा है। पश्चिम राज्य अपने पापों से नष्ट भ्रष्ट होंगे और चीन तथा हिंदुस्तान मनुष्यों के अन्तिम ध्येय प्राप्त करने का भार अपने ऊपर लेने की तैयारी करते है।''

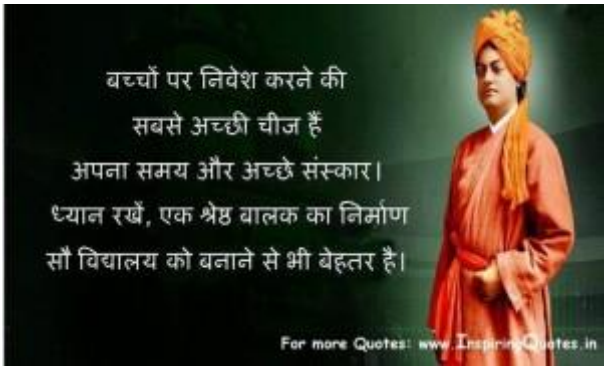

इन उदाहरणों से यह सिद्ध होता है कि भारतीय सभ्यता के मौलिक नियमों को पश्चिमी विद्वान् वर्तमान युद्ध, हिंसा, बर्बरता, उग्रवाद आदि समस्त समस्याओं से मुक्ति पाने का एक सरल एंव सुलभ साधन के रूप मे मानने को तैयार हो रहे हैं। सार्वदेशिक प्रेम और भ्रातृभाव के अपना ये बिना दुनिया में शान्ति की स्थापना असम्भव है। अतएव वर्तमान समय में विश्व बन्धुत्व की भावना दुनिया में सुख शांति एवं आनन्द के लिये अत्यावश्यक है।[11]

३-मतभेद स्वभाविक प्रक्रिया है-

पृथिवी के इस विशाल समाज में मतभेद का होना स्वभाविक है। वेद में इस नियम को इस प्रकार से वर्णित किया गया है यथा-
''समौ चिह्स्तौ न समं विविष्ट, समातरा चित्र समं दुहाते।यमयौश्चित्र समा वीर्याणि, ज्ञातो चित्सन्तौ न सम प्रणीत।।''

अर्थात मनुष्य के दोनों हाथ बराबर शक्तिवाले नहीं होतें एक गाय की दो पुत्रिया (बछड़िया) बराबर दूध नहीं देती, एक माता के दो सहोदर पुत्र जो एक समाज के एक ही स्टेटस के दो व्यक्ति समाज में बराबर दान नहीं देते। इस विषय पर गम्भीरता से विचार करने पर विदित होता है कि यह जगत् बना ही विषमता के सिद्धांत से है। अर्थात् जब तक सत्व, रजस्, तमस् समान अवस्था में रहते है तब तक यह अवस्था रहती है। जब इन तीनों गुणों में विषमता आ जाती है तभी सृष्टि का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है इस प्रकार संसार के अंदर विषमता का होना स्वभाविक है। संसार में प्रचलित विभिन्न मत विचार भी इसी बात की पुष्टि कर रहे हैं अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ऐसी स्थिति में हम क्या करें इस सम्बंध में वेद का स्पष्ट संदेश है कि-

''जनं विभ्रती बहुधा विवाचसे''

अर्थात् पृथ्वी मनुष्यों की रक्षा करती है (जब वे) अनेक भाषाओं और अनेक धर्मों के होने पर भी (इस पृथिवी पर इस प्रकार से मिलकर रहा करते हैं जैसे) एक घर में घरवाले मिल जुलकर रहा करते है उस समय पृथिवी धन की सहस्त्रों धारा उसी प्रकार से

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

दिया करती हैं जैसे- गाय निश्चित रीति से दूध की अनेक धाराए दिया करती है।वैसे तो संसार में विभिन्नता के अनेक प्रकार हो सकते हैं परन्तु मुख्य रूप से भाषा और धर्मो-कर्तव्यों के भेद ही हुआ करते हैं यहा पर विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि धर्म शब्द वेद में मजहब या रिलीजन के अर्थ में नहीं आया है यहा पर भी कर्तव्य अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ संसार का इतिहास भी इसी ओर इंगित करता है कि जब भी मनुष्य आपस मे मिलकर नहीं रहते तभी देश का पतन और समाज में अशांति का वातावरण बनता है। इतिहास में हुए राम-रावण, कृष्ण-कंस, कौरव-पांडव, पृथ्वीराज-जयचंद, अलाउलहसन-जहासोज और गजनी आदि के युद्ध इसी बात के पुष्ट परिणाम हैं। अमेरिका में गोरो तथा निग्रो में अशांति का मुख्य हेतु भी मिलकर न रहने की भावना ही है।[12]

अतएव इसका समाधान भी यही है कि एक परिवार की तरह परस्पर मित्रवत् वैर भुलाकर रहे तभी सम्पूर्ण मानव समाज इस संसार में सुखी सम्पन्न एवं आनंदित रह सकता है इसी में सभी का कल्याण निहित है। आज संसार के प्रमुख चिंतक मनीषी इसी बात को लेकर चिन्तित है भारत की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि यहा विभिन्न भाषा-भाषी, खान-पान, रीति रिवाज, मत, मजहब, के लोग परस्पर प्रेम भाव से रहते हैं अनेकता में एकता ही भारत की सदा से विशेषता रही है। यह भूमि अपने दुश्मनों को भी मित्र की भांति गले लगाने को तैयार रहती है इसीलिये भारत कभी विश्व का सिरमौर गुरु रहा है हम सभी को अपनी इस धरोहर को संभालकर रखना हो

निष्कर्ष

स्वप्नवासवदत्तम् में वर्णित वर्णव्यवस्था
कु.सुनीता ठक्कर.....
धर्मशास्त्रों के अनुसार सामाजिक जीवन व्यवस्था के दो प्रमुख अंश हैं।

१. वर्णव्यवस्था और २. आश्रमव्यवस्था।समाज की समस्त संस्थाओं, ईकाइयों एवं समूह समुदाय आदि के स्वरुप तथा व्यक्ति की भूमिका और कार्य के निर्धारण में वर्णव्यवस्था और आश्रम व्यवस्था इन दोनों का सबसे महत्वपूर्ण स्थान हैं। इस प्रकार सामाजिक जीवन में वर्णव्यवस्था की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सम्पूर्ण मानवजीवन का समान रुप से कार्य सम्पादन का जो उद्देश्य मानकर प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियों ने वर्ण-व्यवस्था का आधार रखा तथा स्मृतियों एवं अनेक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में सभी वर्णों के अलग-अलग कार्य करने का मार्गदर्शन भी कराया।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

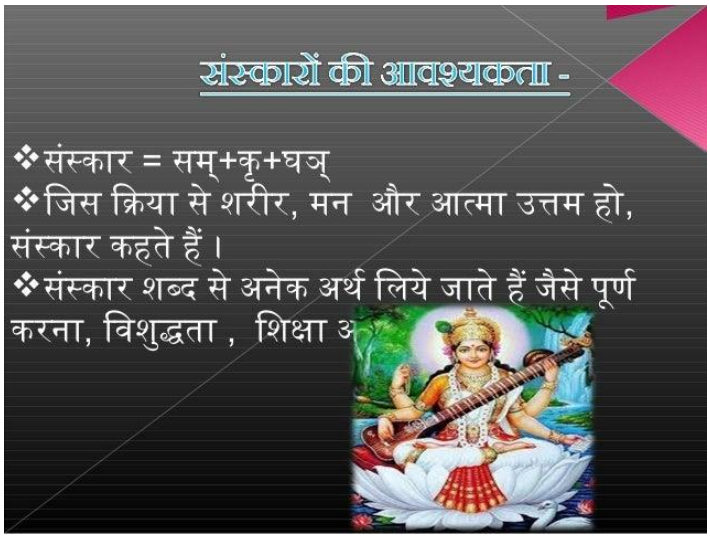

मार्गदर्शन कराने के साथ-साथ सभी वर्णों के लिये यह भी प्रतिबन्ध लगा दिया कि **'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'**। यदि प्राचीन ऋषि-मुनियों ने कार्य के अनुसार यह वर्णव्यवस्था न की होती तो इस सम्पूर्ण मानव-समाज का संचालन ठीक ढ़ंग से नही हो पाता। सभी व्यक्ति सभी कार्यों में संलग्न होकर किसी भी कार्य का सम्पादन अच्छी तरह नहीं कर पातें, जिससे सामाजिक जीवन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती। इस वर्तमान समय में ऋषि-मुनियों के द्वारा की गई वर्ण-व्यवस्था का उल्लंघन कर संसार सम्पूर्ण मानव समाज ने अपने आपकों गड्ढ़े में ढकेल लिया। वर्ण व्यवस्था का उल्लंघन कर संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता पूर्ति का दावा करता है, किन्तु उसका कोई भी कार्य अच्छी तरहपूर्ण नहीं हो सकता।
सामाजिक वर्णव्यवस्था में वर्णविभाजन के आधार में गुणों को महत्त्व दिया है तथा दूसरी ओर कर्म को भी स्वीकार किया गया है।धर्म ग्रन्थों में ऐसा देखने को मिलता है कि लोग विद्या, शिक्षा, तप, यज्ञआदि में अधिक रुचि रखते थे वे ब्राहमण कहलाते थे। वर्ण शासन-संचालन और समाज व्यवस्था में अधिक रुचि लेते थे तथा जिसका प्रधान कार्य देश की रक्षा करना था, वे क्षत्रिय हुए। पशुपालन, कृषि और व्यापार आदि जिनका प्रधान कर्म था, वे वैश्यवर्ण से प्रसिद्ध हुए तथा समाज में तीनों वर्णों की सेवा का कार्य करनेवाले शूद्र वर्ण माने गए। इन्हीं कर्मो के आधार पर वर्ण को चार विभागों में विभक्त किया गया। इस प्रकार हमारे धर्मग्रन्थों में भी वर्णों के चार विभागों का ही वर्णन सुन्दर ढंग से किया गया है।

१.ब्राह्मण वर्ण:- वर्ण विभाजन के क्रम में धर्मशास्त्रकारों ने ब्राहमण को सर्वोपरि स्थान प्रदान किया है, क्योंकि मनु के अनुसार इसे ब्राहमण का दर्जा देने के कारण सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी माना गया है।गौतम के अनुसार द्विज जातियों का कर्म है- अध्ययन, यज्ञ एवं दान करना। आपस्म्ब में भी ब्राहमणों के लिए इन्हीं कर्मो का विधान है। इन्हीं मतों का समर्थन करते हुए याज्ञवल्क्य, विष्णु, अत्रि एवं मार्कण्डेय पुराण में भी अपने-अपने मतों का सम्यक् रुपेण परिचय दिया है।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

इस प्रकार धर्मशास्त्रकारों के मतों के अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्राहमण वर्ण का प्रमुख कर्म अध्ययन अध्यापन, यजन, याजन, दान एवं प्रतिग्रह है।कहा जाता है कि ब्राहमण के मन, वचन एवं कर्म की शुद्धता तथा संयम से देवराज इन्द्र भी अपने आपको पराधीन मानते थे। संक्षेप में इन मन्त्रद्रष्टा ब्राहमणों का जीवन ऐसा था कि सूर्य के प्रकाश की भांति सारे संसार को ज्ञान और विद्या के द्वारा सुयोग्य नागरिक बनाकर उनका गृहस्थ में प्रवेश कराकर आश्रम व्यवस्था को जीवित रखना ब्राहमण वर्ण का मुख्य कर्तव्य था। ब्राहमणों के कर्तव्य का विवेचन गीता एवं श्रीमद्भागवत में भी विस्तार पूर्वक देखने को मिलता है।[12]

२. क्षत्रिय वर्णः- ब्राहमण वर्ण के बाद क्षत्रिय वर्ण का स्थान आता है। अर्थात् वर्णों में इसका दूसरा स्थान है। धर्मशास्त्रकारें ने वेदाध्ययन, यज्ञ सम्पादन एवं दान इन तीन कार्यों में ब्राहमणों के समान ही क्षत्रियों को भी

अधिकार प्राप्त कराया है, किन्तु क्षत्रिय का विशेष अधिकार समस्त प्रजाओं की रक्षा करना बताया है।बौधाध्यन धर्मसूत्र में क्षत्रिय के वर्णधर्म की व्यवस्था को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि क्षत्रिय को जहाँ अध्ययन, यज्ञ, दान एवं प्रजा की रक्षा है वहीं उसे शस्त्र धारण एवं धन की रक्षादि कर्तव्यों के पालन की भी आज्ञा दी गया है। इस प्रकार धर्म शास्त्रीय ग्रन्थों में क्षत्रिय वर्ण का मुख्यतः अध्ययन, यज्ञ, दान एवं शस्त्रधारण तथा विषयों से विरक्त होकर प्रजा का पालन करना ही माना है।

३. वैश्य वर्णः- समाज में वैश्य वर्ण का तीसरा स्थान है। प्रायः सभी धर्मशास्त्रकारों ने वैश्य वर्ण के कार्यों के विभाजन के प्रति पूर्णतः सतर्कता का परिचय दिया है। मनु की व्यवस्था के अनुसार पशुपालन, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, व्यापार करना, कृषि आदि सामाजिक कार्यों का अधिकार वैश्यों को ही प्राप्त है। बौद्धायन धर्मसूत्र भी उपरोक्त व्यवस्था का पथ प्रदर्शक है।इस प्रकार शास्त्रकारों ने वैश्य वर्ण के कर्त्तव्यों का प्रतिपादन किया हे।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

४. शूद्र वर्ण:-वर्णों के विभाजन में शूद्र को समाज में चौथा स्थान प्रदान किया गया है। प्रायः सभी धर्मशास्त्रकारों के मत में वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत शूद्र को एकमात्र कर्म का अधिकारी माना गया है और वह है- ब्राहमण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्णों की सेवा करना तथा उस सेवा से प्राप्त धन ही शूद्र वर्ण की आजीविका का साधन है। गौतम ने भी उपर्युक्त मनु एवं याज्ञवाल्क्य के मत का समर्थन किया है।आपस्तम्ब, बौद्धायन, अत्रि तथा मार्कण्डेय पुराण आदि धर्मशास्त्रकारों ने भी वर्ण धर्म विवेचन क्रम में शूद्र वर्ण के लिए एकमात्र कार्य द्विज सुश्रूषा का ही विधान किया है।

हमारे समाज में प्राचीनकाल से ही वर्ण-व्यवस्था की परम्परा चली आ रही है। इन वर्णव्यवस्था के अनुसार ही मानव अपने कर्मो को भी करता आ रहा है। धर्मशास्त्रों में मुख्य रुप से चार वर्णों की विवेचना की गई है- ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इन चार वर्णों में सर्वप्रथम स्थान ब्राहमण वर्ण का आता है। महा कवि भास ब्राहमण वर्ण से पूर्णरुपेण परिचित थे। अतः उन्होनें स्वप्नवासवदत्तम् में ब्राहमण वर्ण का उल्लेख सम्यक् रुप में किया है। पात्र विवेचन के क्रम में भी कंचुकी नामक दो पात्रों को ब्राहमण वर्ण के अन्तर्गत रखा है। ब्राहमण वर्ण का क्या कर्तव्य है। उसके कर्तव्य पर भी महाकवि भास ने स्वप्नवासवदत्तम् के प्रथम अंक में कंचुकीय के माध्यम से यह प्रतिपादित किया है कि कौन सा स्नातक है जो अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् गुरु को दक्षिणा देने के लिए द्रव्यादि चाहता है। इससे यह ज्ञात होता है कि महाकवि के समय में ब्राहमण वर्ण अध्ययन एवं अध्यापन रुप कर्म में सर्वदा संलग्न रहते थे तथा ब्राहमण वर्ण के लोग छात्रों को सम्यगरुपेण अध्यापन कराते थे तथा अध्ययन समाप्ति के पश्चात् छात्रों से द्रव्यादि ग्रहण करते थे, जिससे उनकी जीविका चलती थी। महाकवि भास के स्वप्नवासवदत्तम् के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय के राजघराने की स्त्रियाँ ब्राहमण वर्ण के लोगों को स्वेच्छा से दान देती थी, जिससे ब्राहमण उस दान में प्राप्तकर उस वस्तु से ही अपना जीवन-यापन करते थे। इस विषय में स्वयं महाकवि का पात्र कंचुकी कहता है कि कौन व्यक्ति कौन सी वस्तु चाहता है, उसके अनुसार राजकुमारी कलश धनादि देगी।इससे ज्ञात होता है कि ब्राहमण वर्ण के लोग अपने कर्म में सर्वदा व्यावृत रहते थे तथा दान दी गयी वस्तु से ही अपना जीवन-यापन करते थे। साथ ही साथ उनका अध्ययन-अध्यापन भी अपना कर्म था।[11]

इस प्रकार महाकवि भास के नाटक में ब्राहमण वर्ण के सम्यकरुप से प्रतिपादन किया गया है कि उस समय के ब्राहमण लोग अध्ययन-अध्ययापन, यजन-याजन, दान तथा प्रतिग्रह रोहि अपनी जीविका चलाते थे। साथ ही साथ नाटक में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि ब्राहमण वर्ण के लोगों को अपने कर्मानुकूल वृत्ति से परिवार का भरण-पोषण नहीं होता था, तो क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण के लोगों के कर्मों का अनुसरण करते थे। इसका उदाहरण स्वयं विदूषक है। विदूषक ब्राहमण होकर भी राजा उदयन

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

के श्रृंगार सहायक का काम करता है। जब विदूषक राजा की बातों से अप्रसन्न हो जाता है तो स्वयं राजा कहते हैं कि महाब्राहमण प्रसन्न हो! प्रसन्नहो! इच्छानुसार ही कहिए। इससे प्रतित होता है कि महाकवि के समय में ब्राहमण वर्ण के लोग हास्य विनोदादि का भी कार्य करते थे।साथ ही साथ ब्राहमण वर्ण के लोग सेवा भाव का भी कार्य करते थे। उदाहरण के रूप में नाटक के दोनों कंचुकी पात्रों को लिया जा सकता है। इस प्रकार महाकवि भास ने स्वप्नवासवदत्तम् में ब्राहमण वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन किया है साथ ही साथ ब्राहमणवर्ण के लोग आपत्तिकाल में अपने कर्मो को छोड़कर अन्य वर्ण के कर्मो को किया करते थे, जो नाटक के अध्ययन से प्रतीत होता है।

जिस प्रकार धर्मशास्त्रों में क्षत्रिय वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन किया गया है उस प्रकार महाकवि भास ने स्वप्नवासवदत्तम् में क्षत्रिय वर्ण का उल्लेख नहीं किया है। नाटक का कोई भी पात्र क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए नहीं दिखाई देता है। राजाओं के लिए अथवा क्षत्रियों के लिए प्रजापालन में तत्परता, शास्त्रों में निपुणता, शस्त्रों को धारण करना, दान, यज्ञआदि करना आवश्यक है। इस नाटक का कोई भी पात्र उपर्युक्त लक्षण से युक्त नहीं है। किन्तु हम यह भी नहीं कह सकते कि महाकवि के समय में क्षत्रिय धर्म का पालन नहीं होता था।महाकवि भास क्षत्रिय वर्णव्यवस्था से सुपरिचित अवश्य होंगे, परन्तु क्षत्रिय वर्ण साक्षात् उल्लेख कभी भी नहीं किया है। संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कलाकार एवं नाटककार महाकवि भास अपने नाटक स्वप्नवासदत्तम् में धर्मशास्त्रकारों के सभी नियमों से परिचित प्रतीत होता हैं। किन्तु नाटक का पूर्वापर अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि वैश्यवर्ण के वर्णन के क्रम में उनकी लेखनी की गति धीमी थी। अथवा उस समय वैश्य वर्ण-व्यवस्था का प्रचलन नहीं हो गाया महाकवि भास को वैश्य-व्यवस्था का वर्णन करना अभीष्ट नहीं होगा। अतः नाटक में सूक्ष्म रुप में भी किसी स्थान पर वैश्य वर्ण-व्यवस्था का संकेत नहीं किया है। महाकवि भास ने स्वप्नवासवदत्तम् में अस्पष्ट रुप से शूद्र का वर्णन किया है। धर्मशास्त्रों में जो कहा गया है कि वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत शूद्रों का एकमात्र धर्म सेवा है। उस सेवा रुपी धर्म का पालन करता हुआ नाटक का पात्र सम्भषक भट्ट (जो मगध राज्य का भृत्य है) दिखाई देता है। वह मगधराज की सेवा में सदा तत्पर दिखाई देता है। किन्तु महाकवि भास ने सम्भषक भट्ट के भृत्य रुप चारित्रिक विशेषता को नहीं उभारा है तथापि नाटक में दिया हुआ पात्र परिचय के अन्तर्गत कवि ने सम्भषक का स्थान दिया है। जिससे ज्ञात होता है सम्भषक मगध राज्य की सेवा करके ही अपने परिवार का भरण-पोषण करता है। जिस प्रकार सम्भषक भट्ट पात्र के रुप में आया है, उसी प्रकार नाटक की दो पात्राएँ वसुन्धरा तथा विजया भी शूद्र वर्ण के अन्तर्गत आती है। उन दोनों की चारित्रिक विशेषता से ज्ञात होता है कि वे दोनों ही राजघराने की सेविका थी तथा शूद्र वर्ण के अन्तर्गत आनेवाले कर्मों को किया करती थी।

ISSN(Online) : 2319-8753

International Journal of Innovative Research in Science, Engineering and Technology

(An ISO 3297: 2007 Certified Organization)

Vol. 2, Issue 11, November 2013

इस प्रकार कवि भास ने अपने नाटक स्वप्नवासवदत्तम् में प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप में चारों वर्णों के ऊँपर प्रकाश डाला है! इस प्रकार ज्ञात होता है कि महाकवि भास धर्मशास्त्रकारों के वर्णव्यवस्था सम्बन्धी नियमों के उपासक थे। [13]

प्रतिक्रिया दें संदर्भ

1. Doniger, Wendy (1999). Merriam-Webster's encyclopedia of world religions. Springfield, MA, USA: Merriam-Webster. पृ॰ 186. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-0-87779-044-0.
2. ↑ Stanton, Andrea (2012). An Encyclopedia of Cultural Sociology of the Middle East, Asia, and Africa. USA: SAGE Publications. पपृ॰ 12–13. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-1-4129-8176-7.
3. ↑ **सन्दर्भ त्रुटि: `<ref>` का गलत प्रयोग; `Monier-Williams 2005 924` नाम के संदर्भ में जानकारी नहीं है।**
4. ↑ **सन्दर्भ त्रुटि: `<ref>` का गलत प्रयोग; `Malik 2005 p.48` नाम के संदर्भ में जानकारी नहीं है।**
5. ↑ Ingold, Tim (1994). Companion Encyclopedia of Anthropology. London New York: Routledge. पृ॰ 1026. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-0-415-28604-6.
6. ↑ Kumar, Arun (2002). Encyclopaedia of Teaching of Agriculture. Anmol Publications. पृ॰ 411. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-261-1316-3. मूल से 3 जनवरी 2014 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 7 मार्च 2021.
7. ↑ DR Jatava (2011). The Hindu Sociology. Surabhi Publications. पृ॰ 92.
8. ↑ Yājñika, Acyuta and Sheth, Suchitra (2005). The Shaping of Modern Gujarat: Plurality, Hindutva, and Beyond, p. 260. Penguin Books India
9. ↑ David Lorenzen (2006). Who invented Hinduism: Essays on religion in history. Yoda Press. पपृ॰ 147–149. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-81-902272-6-1.
10. ↑ (Olivelle, Caste and Purity 1998, पृ॰प॰ 189–216)
11. ↑ (Olivelle, Caste and Purity 1998, पृ॰प॰ 199–216)
12. ↑ Bayly, Susan (2001), Caste, Society and Politics in India from the Eighteenth Century to the Modern Age, Cambridge University Press, पपृ॰ 9–11, आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-0-521-26434-1
13. ↑ (Olivelle, Caste and Purity 1998, पृ॰प॰ 199–203)